श्रमण संस्कृति के संरक्षण में चातुर्मास की सार्थक परम्परा

❑ प्रो. डॉ राजाराम जैन

श्रमण-परंपरा में चातुर्मास की साधना का विशेष महत्व है। प्राचीन काल से ही जैन श्रमण व श्रमणियां चातुर्मास के चार महीनों तक एक ही स्थान पर रहते आये हैं अतः यह काल धर्म की साधना एवं उसके प्रसार-प्रचार का उत्तम अवसर है। प्राचीन काल में श्रमणों व श्रमणियों ने अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ इसी काल में लिखे व संपादित किये। जिनवाणी का प्रचार, ज्ञान की साधना, साहित्य का प्रसार तथा समाज विकास की अनेक योजनाएँ आज भी इसी कालावधि में ही परिपूर्ण होती है। वर्तमान काल में चातुर्मास को सार्थक बनाने के सुझाव दे रहे हैं – डॉ. श्री राजाराम जैन।

— संपादक

सार्थकता : चातुर्मास की

श्रमण-परम्परा की सुरक्षा एवं विकास में चातुर्मासों का विशेष महत्व है। उसका संविधान साधु-साध्वियों के लिए तो है ही, श्रावक-श्राविकाओं के लिए भी उसका विशेष महत्व है। चाहे धर्म-प्रचार अथवा प्रवचन करना हो, चाहे धर्म-प्रवचन-हेतु आत्म-विश्वास जागृत करना हो, चाहे एकान्त-स्वाध्याय करना हो, चाहे आत्म-चिन्तन करना हो, चाहे गम्भीर-लेखन-कार्य करना हो, चाहे प्राचीन-शास्त्रों का प्रतिलिपि कार्य करना हो, और चाहे उनका एकाग्रमन से सम्पादन एवं संशोधन-कार्य करना हो अथवा संघ, धर्म, जिनवाणी एवं समाज के संरक्षण तथा उनकी विकास-सम्बन्धी विस्तृत योजनाएँ बनानी हो, इन सभी के लिए चातुर्मास-काल अपना विशेष महत्व रखता है। श्रावक-श्राविकाओं की भले ही अपनी गार्हस्थिक सीमाएँ हों, फिर भी वे उक्त सभी कार्यों में स्वयं तथा उक्त कार्यों के संयोजकों/सूत्रधारों को भी यथाशक्ति सक्रिय योगदान देकर चातुर्मास को सार्थक बना सकते हैं।

चातुर्मास : अनुकूल समय

चातुर्मास का समय भारतीय ऋतु-विभाजन के अनुसार वर्षा के चार महीनों तक माना गया है। चूंकि जाड़े एवं ग्रीष्म की ऋतुओं में सूर्य एवं चन्द्र की सम्पूर्ण किरणें पृथ्वी-मण्डल को मिलती रहती हैं। उनके प्रभाव के कारण सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति एवं उत्पाद नगण्य ही होता है, अतः इन दिनों में न तो साधु-साध्वियों के गमनागमन में कठिनाई होती है और न श्रावक-श्राविकाओं के लिए धर्माचार एवं गृहस्थाचार के पालन में कठिनाई होती है। इन दोनों ऋतुओं में व्यक्ति का स्वास्थ्य भी अनुकूल रहता है। इन्हीं कारणों से समाज के व्यस्थापकाचार्यों ने गृहस्थों के लिए व्यापार का प्रारम्भ तथा उनके परिवर्तन की योजनाओं, शादी-विवाह के आयोजनों, तीर्थयात्राओं के आयोजन, वेदी-प्रतिष्ठा, मन्दिर एवं भवन-निर्माण आदि के कार्य प्रायः इन दो ऋतुओं में विशेषरूप से विहित बतलाए।

वर्षा का समय विशेष असुविधापूर्ण होने के कारण श्रावकों को बाहरी आरम्भों को छोड़कर घर में ही रहना पड़ता है। साधु-साध्वियों के लिए भी बरसात के समय गमनागमन में अनेक धर्माचार-विरोधी परिस्थितियों के कारण एक ही स्थान पर रहकर धर्मसाधना करने का विधान बनाया गया।

साधु-साध्वी एवं श्रावक-श्राविका जब चार माह तक अपने-अपने आवासों में स्थिर रहेंगे, तो एकाग्रता पूर्वक आत्म-विकास, धर्मप्रचार तथा नवीन पीढ़ी के लिए जागृत, प्रबोधित एवं प्रभावित करने के लिए उन्हें पर्याप्त समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलता है। श्रावक-श्राविकाओं के लिए इस समय घर-गृहस्थी एवं व्यापार के जटिल कार्यों से तनावमुक्त रहने के अवसर मिलते हैं, अतः वे साधु-संघ के सान्निध्य में समय व्यतीत करने की भूमिका ही तैयार नहीं करते, बल्कि अपने सन्तुलित जीवन से अपने बच्चों के/परिवार के अन्य सदस्यों तथा पड़ोसियों के मन में भी एक प्रभावक धार्मिक छाप छोड़ते हैं।

वर्षावास : साहित्य-विकास की यात्रा

मुझे मध्यकालीन हस्तलिखित अप्रकाशित कुछ पाण्डुलिपियों के अध्ययन का अवसर मिला है। उनकी प्रशस्तियों एवं पुष्पिकाओं में समकालीन आश्रयदाताओं, प्रतिलिपिकर्ताओं एवं नगरश्रेष्ठियों की चर्चाएँ आती है। उनके अनुसार श्रावक-श्राविकाएँ साधु एवं साध्वियों के आदेश-उपदेश से अनेक त्रुटित अथवा जीर्ण-शीर्ण पोथियों का प्रतिलिपि-कार्य या तो स्वयं करते अथवा विशेषज्ञों द्वारा करवाते रहते थे। ऐसी पोथियों के प्रतिलिपि-कार्य का प्रारम्भ अथवा पूर्णता प्रायः चातुर्मास के समय ही होता था।

साधु-साध्वियों के लिए भी चातुर्मास-काल में गमनागमन न करने के कारण अपनी दैनिक-चर्या के अतिरिक्त भी पर्याप्त समय मिलता है। वे प्रायः मन्दिरों की परिक्रमाओं अथवा उपाश्रयों के शान्त, एकान्त एवं निराकुल आश्रय-स्थलों में रहते हैं। पुराकाल में तो वे स्वतन्त्र चिन्तन अथवा ग्रन्थ-लेखन का कार्य करते अथवा करवाते थे, या फिर प्राचीन उपलब्ध शास्त्रों का स्वाध्याय, पठन-पाठन, मनन एवं चिन्तन किया करते थे। यही नहीं, इन शास्त्रों में से जो अत्यन्त महत्व का होता था, उसकी आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व मुद्रणालयों का आविष्कार न होने के कारण अनेकानेक प्रतिलिपियों को करवाकर वे उन्हें दूर-दूर के मन्दिरों अथवा शास्त्र-भण्डारों में भिजवाने की प्रेरणा भी श्रावक-श्राविकाओं को देते रहते थे। यदि किसी ग्रन्थ का कोई अंश चूहे या दीमक खा जाते थे, तो साधुगण उतने अंश का स्वयं प्रणयन कर उसे सम्पूर्ण कर दिया करते थे और उसकी अनेक प्रतिलिपियाँ करवाकर उन्हें देश के कोने-कोने में भिजवा देने की प्रेरणा देते थे। प्राचीन ग्रन्थों की प्रशस्तियों एवं पुष्पिकाओं में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

मध्यकाल में भारत में जब राजनैतिक अस्थिरता यहाँ का एक स्वाभाविक-क्रम बन गयी थी तथा साम्प्रदायिक मदान्धता के कारण जैन साहित्य एवं उसकी पुरातात्विक सामग्री की विनाशलीला की गई थी, तब भी कहीं न कहीं हमारा साहित्य सुरक्षित रह गया था। उसका मूल कारण था – चातुर्मासों में संघस्थ हमारे महामहिम साधक मुनियों, आचार्यों, यतियों, साध्वियों एवं भक्त श्रावक-श्राविकाओं की वही सजगता एवं जागरूकता।

कष्टेन लिखितं शास्त्रं

हमारे आचार्य-संघों ने निरन्तर ही दूरदृष्टि से सम्पन्न होकर यह कार्य किया। चातुर्मासों के समय इन मुनिसंघों के सान्निध्य में पिछले वर्षों की सामाजिक, साहित्यिक एवं नैतिक प्रगति एवं विकास अथवा अवनति सम्बन्धी कार्यों का सिंहावलोकन किया जाता था। उसी आधार पर अगले वर्ष की प्रगति की रूपरेखाएँ तैयार की जाती थी। साधु-साध्वी अपने समाज के भविष्य के निर्माण तथा विकास के लिए मार्गदर्शन देते थे और श्रावक-श्राविकाएँ उन्हें यथाशक्ति कार्यरूप देने का प्रयत्न करते थे। यदि ऐसा न होता तो सहस्रों जैनग्रन्थों, मूर्तियों एवं मन्दिरों के नष्ट हो जाने के बाद भी आज इतना विशाल साहित्य, मूर्तियाँ एवं मन्दिर कैसे उपलब्ध हो सके ? एक जैन साहित्य-संरक्षक एवं प्रतिलिपिकर्ता की मानसिक-पीड़ा एवं कष्ट-सहिष्णुता तथा शास्त्र-सुरक्षा के प्रति उनकी समर्पित-वृत्ति का अनुमान निम्न पद्य से लगाया जा सकता है। महाकवि रइधि-कृत शौरसेनी प्राकृत में गाथा-बद्ध "सिद्धान्तार्थसार" (अद्यावधि अप्रकाशित) का प्रतिलिपिकार कहता है कि –

भग्नपृष्ठि-कटि-ग्रीवा, ऊर्ध्वदृष्टिरधोमुखः।
कष्टेन लिखितं शास्त्रं, यत्नेन परिपालयेत्।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि करते-करते गर्दन झुक गई है, कमर एवं पीठ टूट गई है, नीचा मुख करके निरन्तर लिखते रहने के कारण मेरी दृष्टि कमजोर हो गई है। भूख-प्यास सहकर अत्यन्त कठिनाई पूर्वक मैंने इस ग्रन्थ-शास्त्र को लिखकर दीमक एवं चूहों से सुरक्षित रखा है। अतः अब आप जैसे सज्जनों का यह कर्तव्य है कि आप उसे अत्यन्त सावधानीपूर्वक सुरक्षित रखें।

चातुर्मास का इतिहास संजोये ये खंडहर

प्राचीन भारतीय भूगोल के अध्ययन क्रम में यदि ग्रामों एवं नगरों के नामों पर विशेष ध्यान दिया जाय तो चातुर्मासों के महत्व को समझा जा सकता है। बिहार एवं राजस्थान के चौसा एवं चाइवासा तथा चौमूँ जैसे ऐतिहासिक नगर के नाम आज खण्डहर के रूप में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। किन्तु सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से उनका अध्ययन करने की आवश्यकता है। उक्त ग्रामों के नाम-शब्द आज भी प्राकृतभाषा का बाना धारण किए हुए हैं। वे निश्चित रूप से किन्हीं जैन-संघों के चातुर्मास का इतिहास अपने अन्तस्तल में संजोए हुए हैं। उक्त प्रथम एवं तृतीय शब्द चातुर्मासों के ही परवर्ती संक्षिप्तरूप है - जैसे चौसा = चउसा-चुम्मासा-चातुर्मासः। इसी प्रकार चौमूँ-चउमा-चउम्मासा-चातुर्मासः तथा चाइवासा=त्यागी-मुनि-वासः। प्रतीत होता है कि इन स्थलों में कभी किसी युग में विशाल साधु-संघों ने चातुर्मास किये होंगे और वहाँ उस काल में उन्होंने विशिष्ट संरचनात्मक कार्य भी सम्पन्न किए होंगे, जिनकी स्मृति में उन्हें चातुर्मास अथवा त्यागीवास नगर जैसे नामों से अभिहित किया गया होगा, जो आज उक्त संक्षिप्त नामों के रूप में उपलब्ध हैं। उक्त चौसा ग्राम में तो उत्खनन करने पर ८वीं ६वीं सदी की प्राचीन सुन्दर अनेक जैन धातु प्रतिमाएँ भी उपलब्ध हुई हैं, जिन्हें पुरातात्विकों ने प्राचीनतम एवं अनुपम माना है तथा वे पटना एवं कलकत्ता के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

परम्परा को आगे बढ़ाये

आखिर में आचार्य भूतबलि पुष्पदन्त, गुणधर, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यपाद क्षमाश्रमण, जिनसेन रविषेण, हरिभद्र, अकलंक, अमृतचन्द्र, विद्यानन्दि, यशोविजय आदि ने जो इतना विशाल एवं गौरवपूर्ण अमर साहित्य लिखा, उसे उन्होंने कब लिखा होगा? मेरे विचार से उनका अधिकांश भाग चातुर्मासों के एकान्तवास में ही लिखा/लिखाया गया होगा। पूर्व मध्यकालीन कर्नाटक के तलकाट एवं गुजरात के वाटनगर एवं वल्लभी जैसे श्रमण-विद्या के उच्च्व केन्द्र इसके लिए अत्यन्त प्रसिद्ध रहे हैं, जहाँ अधिकांश जैन साहित्य, पुराण, न्याय, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद तथा षट्खण्डागम-साहित्य एवं अर्धमागधी आगम साहित्य एवं उन पर विस्तृत टीकाएँ लिखी गईं। अतः वर्तमानकालीन चातुर्मास के पावनकाल में सचमुच ही उन चिन्तक-लेखक महामनीषियों तथा उनके सौभाग्यशाली अगणित सेवक/श्रावक-श्राविकाओं तथा विद्वानों का स्मरण कर उनसे प्रेरणा लेने तथा उस परम्परा को आगे बढ़ाने की महती आवश्यकता है।

ठोस रूपरेखा बनायें

यह तथ्य है कि जिनवाणी-सेवा, साहित्य-सुरक्षा, मूर्ति-मन्दिर-निर्माण तथा समाज-विकास के कार्य कभी पूर्ण नहीं होते। उनका चक्र निरन्तर चलता रहता है और यह गति किसी भी समाज की समुन्नति एवं विकास की द्योतक मानी गई है। सामाजिक विकास के साथ-साथ द्रव्य-क्षेत्र-काल एवं भाव के अनुसार साहित्यिक एवं पुरातात्विक नित नवीन आवश्यकताएँ भी बढ़ती जाती हैं। अतः उनकी ठोस रूपरेखाएँ चतुर्विध संघों को चातुर्मासों के समय ही पर्याप्त समय मिलने पर पारस्परिक विचार-विमर्श के बाद तैयार की जा सकती हैं और विकास कार्यों को अविश्रान्त गति प्रदान की जा सकती है। बदले हुए सन्दर्भों में आज जिन बातों की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है, वे संक्षेप में निम्नप्रकार है –

१. जहाँ भी आचार्य/मुनि संघ विराजमान हों, उस स्थल का नाम "चातुर्मास स्थल" घोषित किया जाय और वहाँ जैनाजैन विद्वानों की चरित्र-निर्माण सम्बन्धी भाषण-मालाएँ कराई जावें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. नियमित आवश्यक दिनचर्या के अतिरिक्त प्रतिदिन संघस्थ मुनियों एवं आचार्यों के प्रवचनों के कार्यक्रम रखें जावें। उसमें कुछ समय प्रश्नों के उत्तरों के लिए भी निर्धारित रहे।

३. प्रवचनों में तात्त्विक चर्चा के अतिरिक्त चरित्र-निर्माण सम्बन्धी रोचक एवं सरल कथाएँ भी प्रस्तुत की जावें, ताकि नवीन पीढ़ी तथा बच्चे भी उन प्रवचनों को सुनने के लिए लालायित, आकर्षित और प्रभावित हों।

४. आचार्य एवं मुनि-संघ के निदेशन में स्थानीय मन्दिरों एवं उपाश्रयों में सुरक्षित हस्तलिखित-ग्रन्थों की साज-सम्हाल एवं उनका सूचीकरण किया जाय, जिसमें विद्वानों तथा श्रावक-श्राविकाओं का यथाशक्ति पूर्ण सहयोग रहे। तत्पश्चात् जैन-पत्रों में उस सूची को प्रकाशित करा दिया जाय जिससे समस्त शिक्षा-जगत् को उसकी जानकारी मिल सके।

५. चातुर्मास की स्मृति को स्थायी बनाए रखने के लिए एक-एक हस्तलिखित ग्रन्थ का प्रकाशन प्रत्येक नगर की जैन समाज तथा साहित्यिक संस्थाओं के आर्थिक सहयोग से अवश्य किया जाय।

६. चातुर्मास की स्मृति को स्थायी बनाए रखने के लिए प्रत्येक श्रावक-श्राविका को कम से कम नवीनतम प्रकाशित एक जैन-ग्रन्थ अवश्य खरीदना चाहिए।

७. श्रावक-श्राविकाओं को प्रतिदिन मुनि-दर्शन एवं स्वाध्याय की प्रतिज्ञा करना चाहिए।

८. पूज्य आचार्यों, महामुनियों एवं साध्वियों से भी विनम्र प्रार्थना है कि वे अपने चातुर्मासकाल में कम से कम एक नवीन अद्यावधि अप्रकाशित ग्रन्थ का स्वाध्याय, उद्धार, सम्पादन, अनुवाद एवं तुलनात्मक समीक्षात्मक अध्ययन तथा प्रकाशन अवश्य ही करने की कृपा करें। यह कार्य व्यक्तिगत रूप से भी किया जा सकता है अथवा संघस्थ साधु-साध्वियों के सहयोग से भी तैयार कराया जा सकता है।

यदि हमारे आचार्य/मुनि इस दिशा में कार्य करने/कराने की महती कृपा कर सकें, तो जैन-विद्या की सुरक्षा एवं प्रगति में तीव्रगामी पंख लग जावेंगे और हम लोग यही अनुभव करेंगे कि एक बार पुनः हमारे जीवन में प्रारम्भिक सदियों का वह ऐतिहासिक काल आ गया है, जब एक ही साथ अनेक आचार्य एवं मुनि, समाज की आवश्यकतानुसार विविध-विषयक साहित्य का संरक्षण-सम्पादन, प्रणयन, लेखन-कार्य कर रहे थे और जो परवर्ती कालों में सभी के लिए प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करता रहा।

नित्यप्रति बदलते सन्दर्भों में अब यह समय विशेषरूप से जागृत होने तथा जैनेतर समाजों की सभी प्रकार की प्रगतियों और मानसिकताओं को समझने की आवश्यकता है। पारस्परिक तुलना करते हुए यह भी देखना है कि विभिन्न परिस्थितियों में हमारी वर्तमान सामाजिक स्थिति और इसी स्थिति में रहते हुए अगले ५० वर्षों में उसके क्या परिणाम होंगे ? •••

प्रो. डॉ. श्री राजाराम जैन 'जैन विद्या' के श्रेष्ठ विद्वान् हैं। आपको प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी आदि अनेक भाषाओं के साहित्य का विशेष ज्ञान है। आपने अपना सम्पूर्ण जीवन जैन विद्या एवं प्राकृत के अध्यापन में लगाया तथा अनेक ग्रन्थों का प्रयणन तथा संपादन किया। सेवा निवृत्त होने के बाद भी आपकी साहित्य सृजन व शोध-कार्य की प्रवृत्तियाँ निरंतर गतिशील हैं।

— संपादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org